आधुनिक भारतीय कला जगत को समृद्ध करती कला दार्शनिकों की विचारधारा

23

डॉ0 रीता सिंह*

आधुनिक कलाकार कला को आत्मिक आनंद की प्राप्ति का साधन मानते है। किन्तु क्या उनकी इस धारणा को हम पूर्ण सत्य मान सकते है अर्थात् इस प्रकार का आनंद तो मनुष्य को किसी अन्य सरल कार्य से भी प्राप्त हो सकता है यदि वह कार्य प्रेम व तन्मयता से किया जाये। आधुनिक कला के पूर्व कलाकार किसी धार्मिक उददेश्य से या अपने आश्रयदाता की कामना को समझ कर कार्य करते है। कला के प्रयोजन से विषय में किसी को कोई संदेह नही था। किन्तु जब 19वीं सदी में धार्मिक प्रभाव घट जाने से एवं राजाश्रय समाप्त होने से कलाकार स्वतंत्र बुद्धि से कार्य करने लगा तब परिस्थिति बदल गयी। आज आधुनिक कलाकार से यदि उसकी कला का उद्देश्य पूछा जाएं तो शायद ही आपको संतोषजनक उत्तर मिल पायेगा। मनुष्य की रचना, जो उसके जीवन में आनन्द प्रदान करती है, कला कहलाती है। कला कलाकार को सपनों की दुनिया में विचरण करने के लिए विवश या प्रेरित करती है। कलाकार सदैव नवीनता की खोज में रहता है। कला भाव–विभोर करती है, स्तब्ध करती है और सजावट का सामान बनती है। कलाकार को प्रेम, करूणा के साथ जलवायु, सामाजिक परिवेश के साथ–साथ मनुष्य जाति की एकता को संतुष्ट करना होता है और अपने चारों ओर फैली सौम्यता, वेदना और कारूणिकता को महसूस करना होता है। कला मनुष्य के जीवन के लिए अतिआवश्यक है। यह मनोकोष का भोजन है। कला जीवन को ऊँचा उठाने की क्रिया है। विश्व के अनेक दार्शनिकों, कला चिन्तकों ने कला को अपनी–अपनी दृष्टि से परिभाषित किया है।

भारत में "कला" दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित है। कला का अर्थ केवल मनोविनोद या भोग विलास न होकर कलात्मक आवरणों में कल्पनात्मक विस्तार, तत्वाद, ऐतिहासिक परम्परा का आदर्श और सैद्धान्तिक सर्जना की प्रक्रिया को प्राध ान्य माना गया है। कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ–"यथा कला यथा शफ, मघ शृण स नया नयामति"[1] इसके अतिरिक्त "कला" शब्द का प्रयोग शतपथ – ब्राह्मण, षद्विंश– ब्राह्मण, सांख्यायन– ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, आरण्यक तथा अथर्ववेद में भी मिलता है। किन्तु यहाँ कौशल, शिल्प अथवा हुनर के अर्थ में इसका प्रयोग नहीं किया गया है। "कला" शब्द का यथार्थवादी प्रयोग भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में प्रथम शताब्दी में किया – "न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा

**PDFWM चित्रकला विभाग,मेरठ कॉलिज, मेरठ*

कला"[2] अर्थात ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं, न कोई शिल्प, न विद्या जो कला न हो।

जगत् प्रसिद्ध भारतीय कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने कला की परिभाषा निम्न प्रकार से व्यक्त की है – "कला में मानव स्वयं अपनी (अपने विचारों की) अभिव्यक्ति करता है और नहीं भी, अभिव्यक्त वस्तु का स्थान तो विज्ञान तथा दर्शन के ग्रन्थों में निहित होता है।" डा0 रामकुमार स्वामी के कथन में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि "कला मानव की जीवन गाथा और उसका इतिहास है जिसका नेत्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।

दार्शनिक **प्लेटों** के अनुसार, "कला सत्य की अनुकृति है।"[3]

क्रोचे का कथन है, "कला बाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति है। क्रोचे कला को दर्शन व विज्ञान दोनों से श्रेष्ठ मानते है –

नीत्शे ने तो यहाँ तक कह दिया है कि कला जीवन के कड़वे अनुभवों से मुक्ति का माध्यम है।

हीगेल के अनुसार, "कला भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।

अरस्तु – कला अनुकरणीय है।

वास्तव में कलाकर ने सौदर्न्य की अनुभूति को अलौकिक मानते हुए उसे कल्याणकारी माना। कलाकार के हृदयस्थ भावों की व्यक्त कलात्मक अभिव्यंजना है। विविध भारतीय ग्रन्थों, जैसे – चित्रसूत्रम्, कौशीतकी ब्राह्मण, कामसूत्र आदि में कला शब्द की विविध व्याख्याएँ प्रस्तुत कर उसका व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है।

प्रत्येक आकृति अपना चारित्रिक विशेषता व गुण रखती है यही कारण है उसके रूप की भी अपनी मौलिकता होती है। रूप शब्द का अर्थ दृष्टि और मस्तिष्क सम्बन्धी आकृति है। रूप प्रकाश की सहायता से ही दिखाई देता है। किन्तु **अवनीन्द्रनाथ के मातनुसार** आत्मा की ज्योति से ही वास्तविक रूप देखा जा सकता है। महाभारत के शन्ति पर्व के मोक्ष धर्म अध्याय 184 के 33, 34 श्लोकों में रूप शब्द की व्याख्या इस प्रकार है, जैसे – हृदस्य, चतुष्कोण, पतला, भारी–भरकम, गोल व अण्डाकर अनेक अंगों वाले स्पर्श में चिकने, कोमल, कठोर, श्वेत, काला, पवित्र, रक्त लाल, पीला और धुंधला, करूण भद्दा, भंयकर तथा पत्थरदार आदि सभी आकर्षतियों की संख्या अनगिनत है और हमारा मस्तिष्क अनुभव करता है। आँख की सहायता से रूप जैसा एक व्यक्ति को दिखाई देता है वैसा ही दूसरे को भी दिखाई देता है और कैमरे को भी वैसा ही दिखता है। **"ननु ज्ञानानि भिदन्ति"** अर्थात् वह ज्ञान ही जो आकर्षति की वास्तविक विभिन्नता का अनुभव करता है। स्त्री की आकर्षति मुझे माँ के रूप में दिखती है, दूसरे को बहन के रूप में दिखती है, किसी को बेटी के रूप में दिखती है व अन्य को कोई अन्य स्वरूप में। कलाकर जिस

भावना से प्रेरित होता है वह उसी भाव से चित्र चित्रित करता है।

अवनीन्द्रनाथ जी को चित्रो व मूर्तियों में जो सादृश्य उत्तम प्रतीत हुआ था उसको स्पष्ट करने के लिए उन्होने शरीर के विभिन्न अंगो के उपमानों के रूप में प्रयुक्त की गई प्राकृतिक आकृतियों को तथा मानवीय अंगो को उनके अनुसार चित्रित करने वाले कलारूपों को साथ–साथ अंकित करके एक तुलनात्मक विवरण प्रकाशित किया था।[4]

भारतीय चित्रकार यदि संवेदना के आधार पर चित्र रचना करता है तो प्राकषति से प्रेरणा होने के कारण उसे अपनी बात को साधारण शब्दों में करना होता है। किन्तु जब कलाकार सहजानुभूति को आधार बनाकर आत्माभिव्यक्ति करता है तो अपने गूढ़ अर्थो की अभिव्यंज्जना हेतु वह प्रतीक विधान का आश्रय लेता है।[5] कलाकार के अन्तस् में अथाह भावों का विशाल सागर होता है जिसमें डूबते उतरते वह रंगों के साथ क्रीडा करता हुआ आत्माभिव्यक्ति को पट पर साकार करता है और इस अभिव्यक्ति में वह विविध भावों को कुछ सीमित प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त कर देता है।[6] इन प्रतीकों को अभिव्यक्त करने वाले कुछ रूप ऐसे होते हैं जिनका साम्य बाह्य जगत् में स्थित भौतिक पदार्थों से नहीं होता वरन् वे किसी अदृश्य विषय की ओर इंगित करते हैं।

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार "कला में व्यक्ति खुद को उजागर करता है। कलाकृति को नहीं।" अर्थात् कला के माध्यम से मानव अपने मन की अभिव्यक्ति को कला के माध्यम से व्यक्त करता है। कला क्या है? यह इंसान की रचनात्मक आत्मा की यथार्थ के पुकार के प्रति प्रतिक्रिया है।

कला अपनी निर्मिति में सार्वजनिकता का आग्रह ही होती है, चाहे वह कितनी भी वैयक्ति अनुभूतियों की उपज क्यों न हो। कलाकार का जीवन सामान्य मनुष्य के जीवन से पृथक् नहीं होता। उसे भी जागातिक दुख–सुख परेशान करते हैं, उसे भी रोना और हँसना पडता है। उसमें भी प्रेम पाने और देने की आकांशा होती है यानी वह सब कुछ उसमें होता है जो सामान्य व्यक्ति महसूस करता है और जिसमें से होकर गुजरता है। सामान्य व्यक्ति से अलग कोई चीज या गुण कलाकार में होता है या हो सकता है तो वह है एक अलग दुनिया में जीने, उसे बनाने और उसमें खो जाने की उसकी सनक। यह सनक उसे परम बनाती है, उसे नए संसार में दाखिल करती है। एक सामानान्तर दुनिया में जी उठने की उसकी बैचेनी ही उसे सामान्य से विशिष्ट बनाती है या सामान्य से पृथक करती है।

कलाकार कितना भी व्यक्तिवादी क्यों न हो अपने वातावरण से नहीं बच सकता क्योंकि कलात्मक अन्तः प्रेरणा मानव में अन्तर्निहित होती है। किन्तु कलाकृति

एक स्वतन्त्र और तटस्थ विचार नहीं होती है।[7] यह परिस्थितियाँ जैसे–जैसे परिवर्तित होती है कला की विषयवस्तु रूप, रंग और माध्यम भी परिवर्तित हो जाते हैं, क्योंकि यह जीवन के समान स्पन्दनपूर्ण, परिवर्तनशील और विकासपूर्ण होती हैं।

कलाकार अपनी कला में जगत से, जीवन से और स्वयं अपने से सम्बोधित होता है। उसके इस सम्बोधन में ही उसके होने का भाव छुपा है और कदाचित् उसकी भूमिका भी, वरन् कलाकार की कलाकृति सृजन की प्रक्रिया किसी भी प्रकार की हो, सक्षम कलाकार अपनी अनुभूति को कलाकृति के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल रहता है।

पिछले कुछ वर्षो से इस देश के कला जगत में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। कला को कला मण्डी में तबदील किया जा रहा है। नई कला दीर्घाएँ, कला परामर्शदाता, कला संग्रहकर्ता, ई0 गैलरी, ई0 ऑक्शन और कला आधारित बहुत बड़े बाजार अस्तित्व में आ गये है। इस बाजार में लेन–देन अधिकतर तैल चित्रों का होता है। कला डीलरों की रूचि और झुकाव भी इसी ओर है क्योंकि पेंटिग में आय (कमीशन) ज्यादा है। हमारे समाज में आर्थिक और सामाजिक स्तर पर हो रहे परविर्तनों ने कलाकारों को प्रभावित किया है और कलाकृतियों की मांग बढ़ी है। समाज की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आने के कारण कलाकारों को मजबूर होकर परम्परागत और लोकप्रिय माध्यम का चुनाव करना पड़ रहा है। यद्यपि किसी निर्मित कलाकृति के पीछे कलाकार की अत्यन्त सूक्ष्म व संवेदनशील भावनाएँ ही प्रमुख होती है। तथापि उसमें गहरी मानसिक जटिलताएँ भी छिपी होती है। वास्तव में कलाकार ने सौन्दर्य की अनुभूति को अलौकिक मानते हुए उसे कल्याणकारी माना है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कला दर्शन – डा0 हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ – 17

2. स्वतन्त्र कलाशास्त्र – कान्तिचन्द्र पाण्डेय, पृष्ठ – 5

3. स्वतन्त्र कलाशास्त्र – कान्तिचन्द्र पाण्डेय पृष्ठ – 6

4. नटशिख, सरस्वती – गोपीनाथ शर्मा, पृष्ठ सं0 – 557, 569

5. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, भारती भण्डार, प्रयाग, पृष्ठ 35

प्रसाद – "कला जगत् में सौन्दर्य बोध को मूर्त .....उनका प्रतीक बनाने के लिए बाध्य है।"

6. प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का सम्प्रेषण है,"– डॉ0 वर्मा, रामकुमार, साहित्य शास्त्र, भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ – 118

7. आर्ट एण्ड सोसायटी – हर्बट रीट, पृष्ठ – 66